मनुष्य बना

नवम्बर

वा०मू०
६-००

शरणागति,

शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

ब्रह्मचर्य पालन,

लाल फकीरचन्दजी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टि-कोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायगा।

४—किसी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जाँय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जबावी कार्ड आना चाहिये वी० पी० पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य ६—०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले व अगला अङ्क निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति विना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजने चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ साफ लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

प्रकाशक

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ३० | मार्गशीष सं० २०३६ वि० नवम्बर, १९७९ | संख्या २

सहज योग

सहज योग विधि उलटी है, हाँ ॥ टेक ॥
जग के धरम करम व्योहारा, सो मारग प्रवृति।
सहज जोग साधन से प्यारे, सहज में नित्य निवृति ॥ उलटी है
पृथवी छोड़ गगन को धावे, बेधे जाय ब्रह्मंडा।
लख विराट अव्याकृत अन्तर, हिरण्य गर्भ प्रचन्डा ॥ उलटी है
माया सबल ब्रह्म के ऊपर, परब्रह्म दरबारा ।
इनके आगे चढ़े जो साधक, निरखे सत्य पसारा ॥ उलटी है
उलटे नाम का सहज में सुमिरन मुख में बन्द लगाना ।
आँख कान खुलने नहिं पावें, सुन अनहद धुन काना ॥ उलटी है
तन थिर मन थिर सुरत निरत थिर, करे जो सूझे युक्ति ।
युक्ति पाये सुरत शब्द साधे, सहज मिले पद मुक्ति ॥ उलटी है
अलख अगम की गति लख पावे, अन्तर रूप प्रकाशा ।
राधास्वामी चरन कमल में, पावे अन्त निवासा ॥ उलटी है
सहज योग की सहज कमाई, सहज सहज चितलाना ।
राधास्वामी की किरपा से, सहज में धुर निर्वाणा ॥ उलटी है

शब्द

ले०—दुर्गादास 'चमन'

दाता तेरी मौज, प्यारे दाता तेरी मौज।
सारी दुनिया आप बनाई प्यारे तेरी मौज ॥
१—हुक्म तेरे में रहना अच्छा सब से ऊँची बात।
दुनियाँ के यह जीव हैं, करते अपनी-अपनी घात। दाता ···
२—तेरी रचना अन्दर बाहिर देखा खूब तमाशा।
देख-देख के रौनक सारी, मुझको आता हासा ॥ दाता ···
३—ज्ञानी ज्ञान की बातें करते, हुक्म न मानें कोई।
तेरी मौज ऐ दाता मेरे जो होना सो होई ॥ दाता ···
४—तेरा रूप न जानें, कोई अन्दर बाहिर भूले।
देख-देख यह माया तेरी बड़े-बड़े हैं फूले। दाता ···
५—क्या जानूँ कुछ रहा न बाकी, गाऊँ अब क्या गाना।
गूँगे का गुड़ है यह सारा, जो जाना सो जाना। दाता ···

सन्त

ले०—दुर्गादास 'चमन'

सन्त कौन जो हुक्म पहचानें, गुरू की आज्ञा पूर्ण माने।
सन्त कौन जो रहे न्यारा, तीन गुणों को खूब विचारा।
सन्त कौन जो है सम दृष्टि, जहाँ जाए वहां अमृत वृष्टि।
सन्त कौन जो प्रीत न जाने, सब जीवों को मालिक मानें।
सन्त कौन जो हुक्म सुनाए, अहंकार का मैल छुड़ाए।
सन्त कौन जो सत का वासी, मोह जाल की काटे फाँसी।
सन्त कौन जो निन्दा त्यागे, चौबीस घन्टे हुक्म में जागे।
ऐसे सन्त को करूँ प्रणामा,
ऐसे सन्त में बसते रामा।

सुखी रहने के लक्षण

कुण्डलियाँ

इस जग में तुम यों रहो, ज्यों मुर्गाबी नीर।
१. ज्यों मुर्गाबी नीर, नीर में गोते खावे।
जल के बाहिर आय, न अपनो पंख भिगावे ॥१॥
२. पंख न भीगे कभी, रहे सूखे का सूखा।
जल थल एक समान, नहीं वह तृप्त न भूखा ॥२॥
३. तृप्त न भूखा नीर का, देयों उमर बिताय।
निश्चय पावें हंस गति, मानसरोवर न्हाय ॥३॥
४. मानसरोवर न्हाय कर हंस न पावै पीर।
इस जग में तुम यों रहो, ज्यों मुर्गाबी नीर ॥४॥

सुख का लक्षण जो संसारियों ने समझ रक्खा है वह दोष रहित नहीं है। यह किसी वस्तु को पाकर उसके साथ ऐसा घना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं क वह उनके गले का हार हो जाती है। इसके वियोग के ध्यान का दुख उनको ऐसा चिमट जाता है कि इस वस्तु के मिलाप में भी दुख का बीज छुपा रहता है और मिलाप का भोग भी उनको प्राप्त नहीं होता।

सुख वास्तव में वह भोगते हैं जो सुषुप्ति की दशा के समान किसी वस्तु को पाकर भी उसके संग रहते हुए असंगपने की अवस्था को नहीं छोड़ते।

संग में असंग रहना एक अवस्था है। संग में संग रह कर इस प्रकार उससे चिमट जाना कि वियोग से दुःख हो दूसरी अवस्था है। संग में संग करते हुए उत्तम संग की इच्छा में उत्तम वस्तुओं से चिमटते हुए उन्नति की राह पर चलना तीसरी अवस्था है संग में

संग रह कर उससे इस प्रकार चिमट कर रहना कि फिर कभी वियोग ही न हो चौथी अवस्था है। इन चारों अवस्थाओं पर विचार करने से सन्तमत के गूढ़ रहस्य की समझ आयेगी।

संग में असंग और असंग में साँग को बहुत ही उत्तम गुण कहा जाता है। इसका नाम संस्कृत में 'शुद्ध' रक्खा गया है। इसकी दशा पानी के कमल जैसी है जो पानी में रहता है और फिर भी पानी से भोगता नहीं। यह अवस्था सब से उत्तम है और किसी किसी के हाथ आती है। मिथिला के राजा जनक में यही गुण था। यह योग और भोग का मार्ग है। जो बड़े ज्ञानी हैं उनमें यह गुण विशेष रूप से होता है। ऐसे मनुष्य को महा ज्ञानेश्वर और हंस कहते हैं।

संग में वियोग के दुख के संस्कार को मन में रखना और संग पाकर असंग की अवस्था से दुखी होना, दुखी हो जाना अर्थात उस दुख का अनुभव करना साधारण जीवों का गुण और स्वभाव है। इनको 'बद्ध' कहते हैं। बद्ध नाम है बँधे हुए का जो इच्छा रूपी जाल में बुरी तरह फँस जाते हैं। न उन्हें भोग ही प्राप्त होता है और न योग ही की अवस्था हाथ आती है।

संग में साँगी से चिमट कर सर्वोत्तम आत्मिक दशा के आदर्श को मन में स्थापित करके विशेष भाव के साथ उसे भोगते हुए उससे भी अच्छी अवस्था की प्राप्ति का ध्यान रखना पंथाइयों का लक्षण है। यह प्रेम का मार्ग है। इस राह पर चलने वालों को विचित्र स्वाद मिलता है जिसे और लोग नहीं समझ सकते। इनका नाम 'बुद्ध' है। बुद्ध समझबूझ वाले और विवेकी को कहते हैं जो सदैव उन्नति की राह में बढ़ता जाता है। इसमें पहिले पहल कुछ परिश्रम से काम लेना पड़ता है। थोड़े ही दिनों में जहाँ कुछ अभ्यास होगया फिर दुख नहीं होता। अन्त में चलकर वह अपने आदर्श तक पहुँच जाता है जो उसका इष्ट और ध्रुवपद है। फिर उससे एक होकर वह उस पद को सुगमता से प्राप्त कर लेता है जो शुद्ध बताया गया है और जो महा ज्ञानेश्वरों की अवस्था कही गई है। (क्रमशः)

प्रवचन

हुजूर परमदयाल पंडित फकीरचन्दजी महाराज, मानवता मन्दिर, होशियारपुर दिनांक १-७-७८

मारग विहंग बतावैं संत जन
कौन घर से जीव की उत्पत्ति, कौन घर को जावै।
कहाँ जाइ जिव प्रलय होइगा, सा सुर तहाँ चढ़ावै॥
गढ़ सुमेर बाही को कहिये, सुई नखा से जावै।
भू मंडल से परिचय करले, पर्वत धौल लखावै॥
द्वादस कोस साहिब कै डेरा, तहाँ सुरत ठहरावै।
वा को रंग रूप नहीं रेखा, कौन पुरुष गुन पावै॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जो यह पद लखि पावै।
अमर लोक में झुलै हिंडोला, सतगुरु सबद सुनावै॥

राधास्वामी ! मैं इन वाणियों को सुन कर मेरा जीवन इनको समझाने का यत्न करता रहा जो आदमी इस वाणी को पढ़ेगा वह इसका क्या भाव समझेगा। मैंने क्या समझा ? यद्यपि अब समझाने की आवश्यकता महसूस नहीं होती और न ही सत्संग कराने को दिल चाहता है मैं थक गया हूँ। मेरा कर्मभोग है। वह कहते हैं सन्त जन मार्ग विहंगम बतावैं"। अगर कबीर साहिब होते तो उनसे पूछता कि तुम्हारा विहंगम मार्ग क्या है ? मैंने जो समझा वह बताता हूँ। विहंगम पक्षी को कहते हैं। जिस प्रकार पक्षी उड़ता है उसी प्रकार विहंगम मार्ग में सुरत एक विचार को छोड़ कर दूसरे विचार की ओर चलती जाती है। मानलो कि आज सुरत किसी चिन्ता में, उस चिन्ता को छोड़ कर वह दूसरी ओर चली जायेगा वहाँ से एक दम उड़ी और वहाँ चली गई। इसका नाम मार्ग विहंगम है।

सन्त कहते हैं कि विहंगम मार्ग पकड़ो। विहंगम का क्या भाव है ? हम कहाँ से आये हैं ? हम जहाँ से आये हैं हमने वहाँ जाना है। इसका नाम विहंगम मार्ग है

मार्ग विहंग बताबै सन्त जन
कौन घर से जीव की उत्पत्ति, कौन घर को जावै।

मैं अपनी आत्मा से प्रश्न करता हूं। मुझे पता नहीं। कबीर साहिब का क्या भाव है। जीव की उत्पति किस घर से होती है ? एक तो शरीर है, शरीर जीव नहीं है। शरीर की उत्पति मां के पेट से होती है। जीव और चीज है। जो चीज चिन्तन करती, सोचती, समझती, विचार करती और भान करती है उसका नाम जीव है। सोचना समझना कब पैदा होता है ? जब शरीर में प्रकाश आता है तब सोचना समझना पैदा होता है। फिर उत्पत्ति कहाँ से होती है और हमारे अन्तर फुरना कहाँ से होती है ? जिन्होंने अभ्यास किया है वे जानते हैं लेकिन दूसरों को समझाना कठिन है। अगर मानव प्रकाश और शब्द में चला जाये तो फिर फुरना नहीं करती। जब प्रकाश और शब्द में गति होती है तब फुरना फुरती है। हम जीव कहाँ से बनते हैं ? इसका पता मुझे तुम लोगों से लगा। जब यह पता लगा कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, जो फकीरचन्द तुम्हारे अन्तर पैदा होता है वह तुम्हारा अपना ही मन बनता है तो मेरे अन्तर जितनी फुरनायें फुरती हैं उन्हें मैं छोड़ जाता है। किसी रंग रूप और रेखा का विचार नहीं करता। मैं सीधा वहाँ जाता हूं जहां प्रकाश और शब्द होता है। मेरे अन्तर जो चीज प्रकाश को देखती और शब्द को सुनती है उसे मैं जीव कहता हूँ। जब शब्द प्रकट होता है तब वह सुरत प्रकट होती है।

जब अपनी असली (अवस्था) अर्थात बेहालती में शब्द को सुनने से उसमें चेतनता आती है वह हमारी आदि अवस्था है। वह असली

जीव है। जो मन चित, बुद्ध अहंकार पैदा होते हैं यह भी जीव है। यह जीव है और वह हस्ती है। जब हमारे शरीर के अन्तर प्रकाश आता है तब हमारे अन्तर मन बुद्ध, चित्त और अहंकार पैदा होते हैं। मगर कोई ऐसी चीज है जो प्रकाश में रहती हुई प्रकाश को देखती और शब्द को सुनती है जब वह बनती है उस समय जीव आता है। मेरी समझ में जीव वहाँ से आता है। कबीर साहिब को पता होगा कि उनका क्या भाव है। मैं नहीं जानता—

कहाँ जाई जिव प्रलय होइगी, सो सुर तहां चढावै।

जहाँ से हम आये हैं अर्थात जो चैतनता हमारे अन्तर आदम पैदा हुई उसका पता मुझे तुम लोगों से लगा। तुम स्वयं करके देखो, किसी दिन बैठ जाओ। तुम्हारे मन के अन्तर विचार उठते हैं, शकलें बनती हैं उन्हें छोड़ जाओ। क्या हो जायेगा, स्वयं आजमा-कर देखो। यह अमल का विषय है कहने का नहीं। जब मुझे पता नहीं था तो मैं दाता दयाल का रूप बनाया करता था और उस रूप से अपने अन्तर बातें किया करता था। जब आप लोगों ने बताया कि मेरा रूप तुम्हारे अन्तर जाता है मैं तो जाता नहीं तो मुझे पता लग गया कि मेरे अन्तर जो फुरना फुरती है, रंग रूप पैदा होते हैं यह असल में बाहर से नहीं आते, मेरे अपने मन के ही हैं तो मैं मन को छोड़ जाता हूँ अर्थात रंग रूप रेखा, बातें करना, आश रखना सब को छोड़ जाता हूं। सन्तों का मार्ग केवल उनके लिए है जिन्हें अपने घर जाने की आवश्यकता है। यह मार्ग संसारवालों के लिए बिलकुल नहीं है। यह झूठी बात है तुम्हें उस समय पता लगेगा कि हम कहाँ से आये हैं। विहंगम मार्ग क्या हुआ ? जिसे सत्संग से यह पता लग जाता है वह मानव बैठा हुआ शीघ्र ही वहाँ चला जाता है। मैं वहां झट चला जाता हूं एक सैकण्ड नहीं लगता क्योंकि मुझे उस घर का पता लग गया है।

मार्ग विहंग बतावें संत जन
कौन घर से जिव की उत्पति, कौन घर को जावै।
कहाँ जाई जिव प्रलय होइगा, सो सुर तहाँ चढ़ावै ॥

अब कहां प्रलय होगी ? जब दो अढ़ाई महीनों के बाद कभी अभ्यास बनता है और शब्द को छोड़ जाता हूं तो वहाँ प्रलय है। जब वहाँ चला जाता हूं तो न मैं न तू न गुरु, न चेला, न राम न न रहीम और न खुदा न करीम होता है अर्थात वहाँ कुछ भी नहीं होता।

गढ़ सुमेर वाही को कहिये, सुई नखा से जावैं।

समेर पर्वत का अर्थ है सब से ऊँचा पहाड़ अर्थात जहाँ से जीव आया है वह सबसे ऊँची अवस्था है। हमारा शरीर माँ के पेट में चौथे महीने आता है अर्थात रूह माँ के पेट में चौथे महीने आती है। पहले नहीं आती। पहले जीवन बनता है। जीवन और चीज है और हस्ती और चीज है। यह बात मेरे अनुभव में आई है।

भू मंडल से परिचय कर ले, पर्वत धौल लखावैं।

जब तक किसी को वैराग्य नहीं है और यह विश्वास नहीं है कि हमने यहां नहीं रहता है यह हमारा घर नहीं है और यहाँ कोई अपना नहीं है तब तक कोई आदमी वहाँ नहीं जा सकता चाहे जो इच्छा कर लेते। अगर सच्चे जिज्ञासु को सत्संग से हकीकत का पता मिल जाये और उसके दिल में संसार की कोई इच्छा नहीं है तो वह सीधा ही विहंगम अर्थात पक्षी की तरह शरीर से निकल कर मन मन को छोड़कर इस अवस्था में जा सकता है जहाँ वह शब्द के प्रकट होने से पैदा हुआ था मगर वहां केवल वह जा सकता है जिसको अपने घर की तलाश हो। संसार की इच्छा रखने वाला मानव वहां नहीं जा सकता। उसके लिये और मार्ग है। जिस आदमी को विराग्य है और समझता है कि मेरा यहां कुछ नहीं है

है केवल वही वहाँ जा सकता है, बिना वैराग्य के कोई वहाँ नहीं जा सकता। हम संसारी दुखों के कारण कि हमारी लड़की का विवाह हो जाये हमें बीमारी न आये और हमारा यह काम हो जाये हम लोग ईश्वर, गुरू, या राम को याद करते हैं। इस प्रकार याद करने वाला उस घर नहीं पहुंच सकता। यह बिलकुल गलत बात है। यह मेरा अपना अनुभव है। पुरुषोत्तमदास ! समझता है। जब तक इन्सान को संसार से वैराग्य नहीं है कि इस संसार में अपना कोई नहीं है चाहे वह लाख यत्न करे वह वहाँ नहीं पहुंच सकता। पहले भूमण्डल के परिचय करो इसका क्या भाव है ? भू जीवन को कहते हैं। पहले जीव का अनुभव करो कि जीवन क्या है ? जब इसका अनुभव हो जायेगा तब आगे जाओगे। संतमत सर्व साधारण की चीज नहीं है। हम गुरुओं ने संसार को नाम देकर पागल बना दिया जब तक वैराग्य नहीं है कोई अपने घर नहीं जा सकता। इसीलिए तो कहते हैं—

विषयों से जो होय उदासा।
परमार्थ की जा मन आशा ॥
धन सन्तान प्रीति नहीं जाके।
खोजत फिरे साध गुरु जागे।

कौन आदमी है जिसे अपनी संतान से प्रीत नहीं है मुझे बताओ तो सही। आप सब बैठे हुये हैं, संसार की ओर देखो, कौन चाहता है कि मुझे धन न मिले, संतान न मिले। अपनी सन्तान से कौन नहीं बँधा हुआ है। लड़कों लड़कियों का विवाह करना है यह सब बकवास है हम गुरुओं ने केवल अपने नाम, मान प्रतिष्ठा और डेरों के लिए सब को नाम दिया है। सर्व साधारण के लिए वेदमार्ग है। अच्चार रखो, अच्छा काम करो, एक दूसरे की सहायता करो, माँ, बाप की सेवा करो और परोपकार करो ताकि संसार का जीवन अच्छा हो जाये। जो असली घर जाना चाहते हैं वे नहीं जासकते

जैसा कि कबीर साहिब कहते हैं—

मारग विहंगम बतावै सन्तजन
कौन घर से जिव को उत्पति, कौन घर की जावै।
कहाँ जाई प्रेलय होइगा, सो सुर तहाँ चढ़ावै॥
गढ़ सुमेर वाही को कहिये, सुई नख़ा से जावै।
भू मंडल से परिचय करले, पर्वत घौल लखावै॥

इसका क्या भाव है ? इसका कबीर साहिब को पता होगा। जिन्होंने बाणियां रची हैं। मेरा सारा जीवन व्यतीत होगया मुझ पर तुम लोगों ने दया की है। यहां कोई पैसा नहीं देता मैं। जो बारह: साल कमाया सब कुछ दे दिया। मेरे बच्चे भूखे मरते रहे मगर मैंने कोई परवाह नहीं की। आप लोग तो माँगने के लिए आते हो और हम देने के लिए जाते थे। केवल यह देखने के लिए कि वह राम का असली घर कहाँ और क्या है और जो बागी सन्त कहते हैं उसमें क्या असलियत है ? इसका पता मुझे केवल एक विचार से लगा कि मैं तुम्हारे अन्तर नहीं जाता और इसी बात को परदे में रख कर इन गुरुओं ने हमें मूर्ख बना कर लूटा है चाहे वह कोई भी हो। मैं गुरुओं को भी दोषी नहीं ठहराता क्योंकि हम लोग सचाई के लिए नहीं जाते हैं लेकिन मनानन्द के लिए जाते है। जो यह कहते हैं कि गुरु मरते समय लेजाता है वह बिलकुल व्यर्थ, झूठ, धोखा फरेब है। हमें परदा रख कर लूटा गया है लेकिन किसी ने सचाई वर्णन नहीं की। इस प्रकार साफ कहने का दस्तूर नहीं था क्योंकि इससे लोग नहीं खिचते, डेरा नहीं बनता, पैसा नहीं आता और नहीं मान मिलता है।

इसलिए केवल वह इस मंजल तक पहुंच सकता है जिसे यह अनुभव होजाये कि भूमण्डल और जीवन क्या है। मुझे दाता से यह भेद नहीं मिला। मैं सच्ची बात कहता हूं। जिसे प्रकार दूसरे गुरुओं ने परदा रखा उसी प्रकार दाता दयाल ने भी परदा रखा। उन्होंने

(लिखने) में सफाई से काम किया मगर जबानी नहीं कहा। अगर स्पष्ट कह देते तो धाम में पैसा कहाँ से आता और वहाँ कौन आता क्योंकि ससार वालों को इस चीज की आवश्यकता नहीं है। मुझे उस घर की आवश्यकता थी। मैं दाता दयाल को तंग किया करता था। उन्होंने काम देकर कहा था कि तुझे सच्चा सत्गुरु सत्संगियों के रूप में मिलेगा। आप लोग आजाते हैं। मैं आपको अपना गुरु समझता हूँ। मैंने आप लोगों की दया से इस भेद और वाणी को समझा है।

मारग विहंगम बतावै सन्त जन
कौन घर से जिव की उत्पति, कौन घर को जावै।

पहले मैं कुछ और समझता था। जब आप लोगों से पता लगा तो मैं मन के विचारों को छोड़ जाता हूँ। आगे शब्द और प्रकाश है। उसमें जो चेतनपना और हस्ती का भान होता है, वह जीव है। मैं वहां से आया हूँ और वहीं जाकर प्रलय होगा।

अगर उसे पता लग जावे तो जहाँ से वह आया है वहां सुरत चढ़ावे। हम लोग तो सुरत अपने अन्तर भूमध्य या मस्तिष्क के बीच ठहराते हैं और राधास्वामी, राधास्वामी राम राम करते या बाबे फकीर का ध्यान करते हैं। बाबे फकीर का ध्यान करने से क्या तुम वहाँ पहुंच जाओगे ? बिलकुल नहीं। यह झूठ और धोखा करते हैं। तुम्हारा मन तुम्हारे बश में होगा। बाबे फकीर या किसी सरगुण रूप का ध्यान करने से तुम्हारे संसार के काम बन जायेंगे, ऋद्धि सिद्धि आजायेगी मगर तुम अपने घर नहीं जा सकते। सर्व-साधारण गृहस्थियों को स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। मेरा यह भाव नहीं कि मैं खण्डन करता हूं। आप लोग तो गृहस्थी हैं आपको वहाँ जाने की आवश्यकता नहीं इसलिए आपको ध्यान करना चाहिए मगर वे आदमी जो गुरु स्वरूप का ही ध्यान करते हैं अगर वे चाहें कि जहाँ से आये हैं वहाँ चले जायें तो यह गलत है। वे

वहाँ नहीं जासकते क्योंकि वे मन के मण्डल में हैं जब तुम मन को नहीं छोड़ोगे वहाँ नहीं जासकते।

गढ़ सुमेर वाही को कहिये, सुई नखा से जाणै ।

अगर आप अमल से नहीं समझ सकते तो बुद्धि से तो समझ सकते हो जो कुछ मैं कहता हूँ। अमल से तब समझोगे जब साधन करोगे। सुई के नाके में जाना पड़ता है। सुई का नाका क्या है मुझे पता नहीं। क्या अन्तर कोई सुई है ? नहीं। सुई का नाका यह है कि जब तुम सोने लगते हो तो तुम्हें पहले मनूदगी आती है, उस ऊँघ में कोई विचार नहीं होता, जाग्रत अवस्था भूल जाती है उसका नाम सुई का नाका था वंकनाल है। उस घर तक जाने के लिए क्या करना पड़ेगा ? उस घर तक जाने के लिए तुम्हें शरीर, मन और रंग रूप छोड़ने पड़ेंगे जब तुम ये सब छोड़ दोगे तो जिस प्रकार तुम जाग्रत से स्वप्न में जाते हो तो जाग्रत अवस्था को छोड़ जाते हो उस समय जो अवस्था पैदा होती है इसी प्रकार जब हम संसार और मन के विचारों को छोड़ जाते हैं तो हम ऐसी अवस्था से होकर जाते हैं जिसे सुई का नाका कहते हैं। में ऐसा समझता हूँ। मैं दावा नहीं करता कि जो कुछ मैं कहता हूं यही ठीक है। जिस बात से मैंने समझा और मुझे तसल्ली हुई वह मैं कहता हूँ।

दाता दयाल ने कहा था कि शिक्षा को बदल जाना मैंने बदल दिया। मगर मैंने शिक्षा को अपने अनुभव के आधार पर बदला है दूसरों के कहे अनुसार नहीं बदला। मैं सारी आयु कानों में उँगलियाँ डाल डाल कर सुई का नाका और वंकनाल ढूंढते ढूंढते मर-गया मगर कुछ नहीं मिला। सुई नाका क्या हुआ ? सुई का नाका वही है जब हम शरीर को भूल कर आगे जाते हैं तो मनूदगी आती है, पता नहीं लगता कि हम कहाँ है फिर आगे की चेतनता आती है। उस दरम्यानी हालत को मैंने नाका समझा है। मगर यह किसे आयेगा और आदमी कब जायेगा ? जब उसे भूमण्डल से परिचय

होगा। जिसे संसार से वैराग्य नहीं और इस संसार को सत मानता है उसका तो बाप भी वहां नहीं जा सकता। गृहस्थियों को इस बात से क्या मतलब, उन्हें तो संसार चाहिए। यह नाम और बाने केवल उनके लिए है जिन्हें संसार का अनुभव हो चुका है और जिन्होंने यह जान लिया है कि इस संसार में कोई भी अपना नहीं है, एक दिन अवश्य संसार को छोड़ जाना है। दूसरे आदमी इस ओर नहीं आते। यह इन्दौर वाली माई यहाँ आई हुई है यह घर से निराश होकर आई है लेकिन फिर भी लड़कियाँ इसका पीछा नहीं छोड़तीं। जब ये आती हैं तो इसके दिल में मोह पैदा होता है। मोह का पैदा होना प्राकृतिक बात है यह किसी के बस में नहीं है। बेशक लड़कियाँ दामाद आये लेकिन मोह पैदा न हो। जैसे और आदमी मिलते हैं वैसे वे मिलें फिर ठीक है। माँ! समझती है कि मैं क्या कह रहा हूं। मैं अपनी जिम्मेदारी महसूस करता हूँ। यह यहाँ इसीलिये आई है कि अगर बाबे के पास मरूँगी तो मुक्त हो जाऊँगी। तुम्हें तब तक मुक्ति नहीं मिल सकती जब तक तुम्हारा संसार से अर्थात सम्बन्धियों, धन धान्य गुरु की देह, आश्रम से प्रेम है इसीलिए सनातनधर्म वालों ने सन्यास रखा है, लेकिन अब वह पिछला जमाना गया अब तो केवल मन से ही सन्यास लेना पड़ेगा। संसार में अपने बाल बच्चों के साथ रहो लेकिन किसी को दिल मत दो, मन को पलट दो अधिक परिश्रम और तप करने की आवश्यकता नहीं है—

भू मंडल से परिचय करले पर्वत धौल लखावै।

जब ऊपर चढ़कर जाओगे तो आगे क्या होगा? धौल पर्वत, धौल पर्वत पर बारह महीने सफेदी रहती है। धौलागिर पर्वत बिल्कुल सफेद होता है। जब मन को छोड़कर सुई के नाके से जाओगे तो तुम्हारे आगे प्रकाश का पहाड़ अर्थात प्रकाश ही प्रकाश आयेगा। वह प्रकाश ही ब्रह्म है। उन्होंने तो धौल पर्वत कह दिया।

मैं भी सारा जीवन पहाड़ देखता देखता मर गया लेकिन वहाँ कोई पहाड़ नहीं है। जब मानव बंकनाल से जाकर शरीर को भूल जाता है तो आगे क्या आता है ? प्रकाश, नूर, नूर, नूर। इसका यह भाव है जो मैंने समझा है—

द्वादस कोस साहिब के डेरा, तहाँ सुरत ठहरावै।

द्वादस कोस का क्या भाव है। क्या वहां बारह कोस हैं ? यह वर्णनशैली है, शरीर के छः चक्कर, मन के छः चक्कर, गुदा, इन्द्री; नाभी, हृदय कण्ठ और तीसरा तिल। इसी प्रकार मन के छः चक्कर हैं इससे आगे क्या है ? इससे आगे सतलोक प्रकाश है धूलगिरी है; प्रकाश ही प्रकाश का समुद्र है। मैं आप लोगों की दया से सुखी हुँ। कैसे ? जब तुम लोगों से पता लगा कि मेरा रूप तुम्हारे अन्तर जाता है लेकिन मैं नहीं जाता तो मेरी आंख खुल गई। इसी एक बात को परदे में रख कर ये धर्म और पंथ बन गये और हम गरीब आदमी लुट गये। कोई दिल्ली, कोई आगरे, कोई आनन्दपुर, कोई मक्के मदीने और कोई कहीं दौड़ा जाता है। वहाँ क्या रखा है। अपना ही विचार विश्वास और श्रद्धा है। कहीं कुछ नहीं है जो कुछ है तुम्हारे अपने अन्तर है। सुमिरन से शरीर के छः चक्कर भूल जाता है। वह कहते हैं 'विहंगम' जब सत्संग मिल जाता है और बात समझ में आजाती है तो मानव सीधा ही विहंगम मार्ग से ऊपर चला जाये अधिक अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं। अब मैं ऊँचा चला गया हूँ। मैंने मन की बहुत सैर की है।

द्वादस कोस साहिब के डेरा, तहां सुरत ठहरावै।
वा को रंग रूप नहीं देखा, कौन पुरुष गुन गावै॥

कबीर साहिब ने क्या कहा है। वह इशारा कर गये, इसे कौन समझे। जब तुम सुई नखा से जाओगे जैसे मैं कहा करता हूँ कि अन्तर प्रकाश को देखने और शब्द को सुनने वाली कौन चीज है उसका पता नहीं लगता। जो चीज प्रकाश को देखती और शब्द को

सुनने वालो कौन चीज है उसका पता नहीं लगता। जो चीज प्रकाश को देखती और शब्द को सुनती है वह और चीज है और प्रकाश और शब्द और चीज है। तुम शब्द को सुनते हो। तुम और हो। वह जो चीज 'तुम और हो' उसका मुझे अन्त नहीं मिला। कबीर साहिब कहते हैं वह हमारा आद घर है। उसमें न रूप, न रंग और न रेखा है। जब मैं वहाँ अकेला हो जाता हूँ तो वहाँ न खुदा है, न ईश्वर का विचार रहता है, न वहाँ गुरु रहता है और न वहां चेले का विचार रहता है फिर किस के गुण गाऊँ किस के आगे सजदा करूँ ? इसका मैंने क्या भाव समझा ? पुत्रो ! मैंने प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा। तुम मेरे भाई, बहन और मातायें हैं। मैं किसी बात का दावा नहीं करता मेरी सारी आयु सचाई की खोज में व्यतीत होगई। मैंने जो समझा वह कह दिया। जब मैं महीने दो महीनों के बाद वहाँ जाता हूँ तो न वहाँ 'मैं' न खुदा, न लेना न देना, न मैं पहले था और न पीछे रहूँगा लेकिन मैं प्रकाश और शब्द को नहीं छोड़ सकता। तभी तो मैंने समझा कि मैं कौन हूँ। मैं एक चेतन का बुलबुला हूँ। अगर मैं वहाँ पहुंच कर कुछ कर सकता होता तो मान लेता कि मुझमें कुछ शक्ति आगई है। मैं तो क्या, कोई भी कुछ कर सकता होता। अगर पिछले सन्त कुछ कर सकते होते तो अपने लिए ही कुछ कर लेते। उन्होंने क्या कर लिया। मुझे शान्ति कहां मिली ? मैं कौन हूँ। मैं चेतन का एक बुलबुला हूं। वह एक तत्व है। मेरे दिल में भ्रम और अज्ञान था जिससे मैं ढूँढता फिरता था। अब किसी चीज की खोज नहीं है। उसने एक चेतन का बुल-बुला बनाया है जब उसकी इच्छा होगी, टूट जायगा न मैं पहले था और न पीछे रहूँगा। मेरी 'मैं' चली गई मेरी समझ में यह बात आई है। हो सकता है कि मैंने गलती की हो या ठीक किया हो। मैं चाहता हूं कि अगर मैं गलती पर हूँ तो कोई तो महात्मा मेरे विरुद्ध

ने मेरे विरुद्ध कलम नहीं उठाई प्लेट फारम पर तो किसी ने नहीं कहा लेकिन अन्तर मन में चाहे गालियां ही देते हों या कहते हों कि बाबे का सत्संग न सुना करो वह हुक्का पीता है क्योंकि मेरे सत्संग से उनकी हानि होती है।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो जो यह पद लख पावे।
अमर लोक में झूलै हिंडोला, सतगुरु शब्द सुनाते॥

अमर कहते है जो चीज सदा रहनी है। हम अभ्यास करते हैं जितने रूप बनते हैं वे सदा नहीं रहते मगर उन रूपों को देखने वाला सदा रहता है। हम प्रकाश देखते हैं, प्रकाश भी समाप्त हो जाता है मगर देखने वाला रहता है। फिर अजर अमर कौन हुआ? हमारी जात अजर अमर है। अपने अमर पने में रह कर आदमी एक अवस्था में रहता है। उसे आदमी वर्णन नहीं कर सकता। अब बेबसी की दशा में काम करता हूं। लेकिन दिल नहीं चाहता। मेरी समझ में बात आगई, शान्ति मिल गई—

हंसा! छोड़ो कर्म की आसा।
कर्म काल सब जगत नचावे, फिर फिर करै गिरासा।
उपवन विनशत कर्महि कहिये, कर्म ही जगत विनासा॥
कर्महि काल व्याल पुन कर्महि, कर्महि की सब त्रासा।
जप तप कर्म बाँध जग राखे, पाप पुण्य विश्वासा॥
कर्महीं देवल तीरथ कहिये, कर्महि अटल उदासा।
कर्महि जोग ध्यान तप पूजा, कर्म चढ़ावै दासा॥
कर्महि दुख सुख जड़ चेतन है, तीन लोक परकासा।
कर्महि देइ लेइ पुनि कर्महि, यज्ञ दान रहै बासा।
प्रतिमा भूत कर्म के बस हैं, चार वियार निवासा॥
कर्म दुखी दारिद्री कहिये, कर्महि भोग विलासा।
कर्म विकार राह तज बैठो, कहैं कबीर सुख रासो॥

जमीन घूम रही है। क्या आपको पता लगता है? जमीन हर

समय घूमती है तब आपको पता लगता है जब सूर्य चढ़ता या डूबता है। हमारे शरीर के अन्दर खाना हजम होता है, जिगर फेफड़े काम करते हैं क्या आपको पता होता है ? नहीं। इसी प्रकार सारा संसार कार्य करता है जैसे कबीर साहिब कहते कि कर्म की आशा छोड़ दो यह उन्हें पता होगा कि कबीर साहिब का क्या भाव है। मैं कर्म की आसा छोड़ने का भाव यह समझता हूँ कि जो कुछ हो रहा है वह तो होना ही है, तुम चिन्ता न करो और इसके पीछे न पड़ो। कर्म हर समय चलता रहेगा। इसे कोई नहीं रोक सकता लेकिन हम अपने आपको उसमें न फँसायें।

हंसा छोड़ो कर्म की आशा
कर्म काल सब जग नचावे
फिर फिर करै गिरासा।

कर्म का अर्थ समझते हो ! कर्म का अर्थ गति करना है। यहाँ हर चीज गति में है जैसे सूर्य, चाँद, सितारे लोक लोकान्तर और हमारे शरीर में हर चीज गति में है। हर स्थान पर गति है। अब इसको छोड़ो का क्या अर्थ है ? गति तो रहेगी। 'छोड़ो' का भाव यह है कि कोई परवाह न करो। जो कुछ होना है वह होना ही है किसी के वश की बात नहीं है। यह कबीर साहिब का भाव है जहाँ तक मैं समझता हूं। अगर कबीर साहिब का और भाव है तो वह जानें।

उपजन बिनशन कर्महि कहिये, कर्महि जगत बिनासा।
कर्महि काल व्याल पुन कर्महि, कर्महि सब आसा॥
जप तप कर्म बाँध जग राखै, पाप पुन्य विश्वासा।
कर्महि देवल तीरथ कहिये, कर्महि अलह उदासा॥

मैं स्वयं सोचता हूँ कि कबीर साहिब का क्या भाव है। मैं कोई दावा करता हूं कि जो कुछ कबीर कहता है वही मेरा भाव है। यह बात नहीं है। मैंने अपना जीवन व्यतीत कर दिया। मैंने यही समझा

कि जो कुछ संसार में हो रहा है, हो रहा है तुम अपनी आशा छोड़ दो। अपने निजी स्वार्थ के लिए चिन्ता मत करो। मैंने ऐसा समझा है। कबीर का क्या भाव यह वह जानें। हमारे साथ कर्म तो रहेगा ही। संसार गति में है। जब तक जीवन में हमारा शरीर गति में है जब हम सो जाते हैं तो भी शरीर काम करता है। नाड़ियाँ चलती हैं, खून चलता है नबज धक धक चलती रहती है।

है कि संसार में आकर अपनी इच्छा के लिये कोई काम न करना अर्थात इच्छा रहित होना, तभी आदमी उस जगह पहुंच सकता है। अगर कोई वासना है तो नहीं पहुंच सकता।

कर्महि जोग ध्यान तप पूजा, कर्म चढ़ावैं दासा।
कर्महि दुख सुख जड़ चेतन है, तीन लोक परकासा॥

मैंने इसको साफ कर दिया। मैं विहंगम चाल के अतिरिक्त कोई साधन नहीं करता। जब अभ्यास में बैठता हूं तो सुख को वहाँ ले जाता हूं। अब क्या करूँ। मुझे हकीकत का पता लग गया कि यह सारा काम काल कर्म का चक्र था।

कर्महि देइ लेई पुन कर्महि यज्ञ दान रहै बासी।
प्रतिमा भूत कर्म के बस है, चार विचार निवासा॥

पुरुषोत्तम ! मैं आप सोचता हूं कि कर्म को कैसे छोड़ जब यहाँ हर चीज गति में है तो कर्म तो होता रहता है। केवल अपनी जात के लिए किसी चीज की इच्छा न रखना ही कर्म को छोड़ना है अर्थात अपने निजी स्वार्थ के लिए कोई इच्छा न रखना, किसी वासना में न फँसना, कोई यत्न न करना ही कर्म का छोड़ना है। मैंने यह समझा है। मैं सारा जीवन इन वाणियों को पढ़ पढ़ कर पागल होगया मुझे दाता ने गुरु बता कर मुझ पर दया करदी। तुम लोगों के इस एक विचार ने कि मैं तुम्हारे अन्तर नहीं जाता मेरे जीवन का तख्ता पलट दिया। मुझे शान्ति तिलगई। मुझे विश्वास होगया कि [illegible]

तो जाता नहीं। मेरे अन्तर जो कुछ फुरना फुरती है वह मेरी मन ही बनता था और अब मैं मन को छोड़ गया हूँ। मन है, मन फुरता है और मैं अब मन से ही बात कर रहा हूं मगर इसमें फँसता नहीं। इतनी ही बात है और कुछ नहीं। नौ बार हल चलाकर एक बार सुहागा दे दो। सुहागा फेरना क्या है ? यह समझ आगई कि जितना खेल है यह सारे का सारा समाप्त हो जाता है। मुझ पर यह दया तुम लोगों ने की मेरे पास आप लोगों को देने के लिए कुछ नहीं है वरना अवश्य देता। जितनी मन्दिर में आप लोगों की सेवा हो सकती है वह करता हूँ।

कर्म दुखो दारिद्रा कहिये, कर्महि भोग विलासा।
कर्म विकार राह तज बैठो, कहैं कबीर सुख रासा ॥

कर्म को छोड़ दो। तुम कर्म को तभी छोड़ोगे जब तुम अपने निजी स्वार्थ को छोड़ दोगे वरना आप तो क्या, किसी से भी कर्म नहीं छूटता। अगर तुम अपने स्वार्थ के लिए काम नहीं करोगे तो वह तुम्हें दुखदायक नहीं होगा जितना झगड़ा है यह अपनी 'मैं' और अपने स्वार्थ का है। अगर मैं इस विचार से सत्संग कराता हूँ कि मेरी मान प्रतिष्ठा हो, मुझे धन मिले तो मैं कर्म की फाँस में हूँ। तुम लोग आते हो, तुम्हारी इच्छा करे आया करो न करे मत आया करो।

कर्म विकार राह तज बैठो, कहैं कबीर सुख रासा।
वह कहते हैं कि 'विकार कर्म की राह को छोड़ बैठो'

तब तुम्हारा बेड़ा पार होगा। विकार कर्म क्या हुआ ? जपने स्वार्थ, आराम, सुख के लिए जो हम कर्म करते है वे दुख का कारण बन जाते हैं। अपने लिए न जीओ दूसरों के लिए जीओ। यही दाता दयाल ने मुझे लिखा था कि फकीर ! अपने लिए न जी (जीवित रह) दूसरों के लिए जी, फिर कोई बात नहीं है। मैं सत्संग करता हूं, अपने लिए नहीं करता लेकिन आप लोगों के लिए कराता हूँ। मुझे

इसका कोई बन्धन नहीं है। अगर मैं अपने लिए कराऊँ कि मुझे धन आजाये, मेरी मान प्रतिष्ठा होजाये, मेरी बड़ी प्रभुता हो जाये तो मैं फँस गया।

आप लोग आजाते हैं। अब मैं जीवन में सफर करता करता थक गया हूँ। जिस प्रकार मानव किसी चीज को ढूँढ़वार थक जाता है जब वह मिल जाती है तो वह शान्त हो जाता है। पिछले जो प्रालब्ध कर्म हैं वे काटने हैं इसका पता नहीं कि एक या दो साल शेष रहें। मेरे पास शुभ भावनायें हैं। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि तुम्हें स्वस्थ खाने को रोटी और मन को शान्ति मिले तुम्हें मुक्ति की तो आवश्यकता नहीं। शेष विशेष विशेष आदमी हैं जो इस मार्ग पर चलने वाले हैं। सर्व साधारण इस मार्ग पर चलने वाले नहीं हैं। यह तो सन्तों ने अपने डेरों, मान प्रतिष्ठा के लिए लोगों को नाम दिया है।

———

इन्द्रियाँ

गताँक से आगे

किसी को भोजन के स्वाद में आनन्द आता है। वह चिटोरा होता है। किसी को कनरस में सुख प्राप्त होता है। किसी को कनरस में सुख प्राप्त होता है। किसी को अच्छे दृश्य देखने में विशेष आनन्द मिलता है। किसी को सूँघने की, किसी को छूने की धत होती है। यह पाँच ज्ञान इन्द्रियों के काम हैं। इसी प्रकार किसी किसी को काम का धुनि बराबर लगी रहती है।

जो जिह्वा के स्वाद में लम्पट होते हैं वह कुत्ते के सदृश निर्लज्ज हैं। कामी को बदनामी का भय लगा रहता है। वही दशा हर इन्द्री के स्वाद की है। बदनामी और निर्लज्जता में सुख कहाँ है? इनका परिणाम दुख होता है। इसी प्रकार और इन्द्रियों के विषय में भी समझ लो।

इन सब में काम की इन्द्री महा बलवान होती है। कामातुर मनुष्य को उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सूझता। यह कोई नहीं कहता कि मनुष्य इन्द्रियों का व्यवहार न करे। इन्द्रियाँ व्यवहार ही के लिये हमको मिली हैं परन्तु इनके रूप को न समझ कर उन्हीं का हो रहना भूल और भ्रम है। जो मनुष्य आवश्यकता से अधिक इनसे काम लेता है वह स्वास्थ्य से हाथ धो बैठता है और अपने मन, बुद्ध और शरीर को बिगाड़ लेता है। जहाँ इनमें से किसी में भी दोष आया तो फिर वही दुख रूप हो जाते हैं।

काम अंग के रात दिन पीछे पड़े रहने से एक तो शरीर के व्यवहार में दोष आजाता है और जहाँ तराजू का कोई पल्ला नीचे की ओर झुका या ऊँचे की ओर चढ़ा फिर समता का अभाव हो जाता है। अन्त में शान्ति और सुख का कोसों पता नहीं रहता।

कामी मनुष्य बिना समझे बूझे हिंसक हो जाता है। लज्जा तो उसमें नाम मात्र भी नहीं होती। वह दूसरों की बदनामी और उनके हानि पहुंचाने का कुछ भी ध्यान नहीं रखता। हिंसा बहुत बड़ा पाप है और ऐसे पापियों का उद्धार शीघ्र नहीं होता।

कामी पुरुष में स्वार्थ साधन का अंग भी प्रबल होता है। स्वार्थ-साधन मन की मलीनता का नाम है। यह मलीनता उस पर अपना प्रभाव डाल कर उसमें पशुवत भाव वैसे ही उत्पन्न कर देती है जैसे माँस खाने वाला पशुओं के माँस के प्रभाव को अपने अंग संग बना कर क्रोधी, लड़ाका और चंचल हो जाता है। सच्ची बात तो यह है कि कामी माँसाहारी से भी बहुत नीचे गिर जाती है।

लड़ाई होती है। झगड़े मोल लिये जाते हैं। अनेक प्रकार के उत्पात मचते रहते हैं जो अन्त में जीवन को दुखदायी और निकम्मा बना देते हैं।

जिस मनुष्य का व्यय उसकी आमदनी से अधिक है उसे बुद्धि-वान कोई नहीं कहता। देवालिया हो जाता है और ठिकाने से बेटिकाने बन जाता है। यही दशा मनुष्य के वीर्य की भी है। यदि वह अधिकता के साथ पतन होता रहेगा तो शरीर भी निर्बल हो जायेगा। दुर्बलता और अवलता आती जायेगी। संर चकरायेगा, हाथ पाँव में कपकपी रहेगी। बुद्धि भ्रष्ट हो जायेगी। देखने सुनने चखने, सूँघने और छूने की शक्ति जाती रहेगी। अंग प्रति अंग ढीले और बेकाम हो जायेंगे। किसी एक इन्द्री के पीछे लगे रहने से सारी इन्द्रियां शिथिल हो जायेंगी और अनेक प्रकार के रोग धर दबायेंगे। फिर उसका लोक परलोक कुछ भी न सुधरेगा।

यह सारी इन्द्रियाँ स्वयं कुछ भी नहीं हैं। क्रिया शक्ति जो इनमें प्रतीत होती है वह इनकी अपनी नहीं हैं। यह किसी और वस्तु की धार से जीवित रह कर काम काज करती रहती हैं। जहाँ धार

खिच गई या उसमें कमी आगई तो यह फिर बेकाम हो जाती हैं। यदि न माना तो अपनी कलाई पर सूत का धागा बाँध कर देख लो या किसी की मूर्च्छित अवस्था पर विचार करके अनुभव करलो। आवश्यकता से अधिक इनका व्यवहार करना भूल है। 'एक नारी सदा ब्रह्मचारी, बहु नारी सदा व्यभिचारी।' अपने सच्चे सुख के भाव को इनके अर्पण न करो किन्तु इन्हें साधन समझ कर समय समय पर इनसे काम लेने की युक्ति सोचो, तब तो बात है नहीं यों अपनी बहुत बड़ी हानि कर बैठोगे !

———

मन नं० १

कुण्डलियां

सुख का चिन्तन यों करो, जैसे मन संकल्प
जैसे मन संकल्प, रूप औरन को धारे।
होय जाय वहि रूप, अपना रूप बिसारे ।।१।।
अपना त्यागे रूप, और का रूप बनावे।
भृंगी कीट समान, कीट भृंगी ह्वै जावे ।।२।।
भृंगी बन कर कीट त्याग पृथ्वी को उड़ता।
अपना नाता तोड़, उसी को ओर वह मुड़ता ।।३।।
मुड़ता सेब संकल्प ले, तजा विकार विकल्प।
सुख का चिन्तन यों करो, जैसे मन संकल्प ।।४।।

जैसे इन इन्द्रियों द्वारा शारीरिक व्यवहार होते रहते हैं वैसे यह हमारा मन भी है। इसका दर्जा इन्द्रियों से बडा है। यह इन्द्रियों का हाकिम है। इन्द्रियां इसी के आधीन रहती हैं परन्तु यह भी स्वतन्त्र नहीं हैं। यह भी किसी बड़ी शक्ति के आधीन है। इन्द्रियां

स्थूल हैं। यह सूक्ष्म है। यह इन दोनों में भेद है। सेना का सेनापति सिपाहियों का हाकिम है। यदि उसमें इस पदवी के ग्रहण करने की योग्यता है तब तो वह सच्चा हाकिम है और यदि सेनापति पर सिपाही अपना प्रभाव डाल कर अपनी इच्छानुसार काम कराते रहते हैं तो उसमें हाकिम बनने की योग्यता नहीं है। ऐसे सेनापति की ओर से राजा को बराबर खटका लगा रहता है।

इस मन में यह गुण है कि वह जिसे देखता, सोचता और सुमिरता है उसी का रूप हो जाता है। काँच के प्याले में जिस रंग का पानी भर दो वह उसी रंग का दिखलाई देता है। पानी गिरा दो तो फिर वह अपने असली रंग में आजाता है जो एक दम उज्ज्वल और निर्मल है। यदि मन हरी वस्तु को देखता है तो हरा हो जाता है लाल रंग को देखता है तो लाल ही बन जाता है। यही मन दुख में दुखी, सुख में सुखी, उदासीनता में उदास, निराशता में निराश, बन्धन में बद्ध, मुक्ति में मुक्त, पण्डिताई में पण्डित, खण्डन में खण्डित और मण्डन में मण्डित हो रहता है। रोने वाले को देखकर आँसू बहाता है। हँसने वाले को देखकर मुसकराता है। ज्ञान में ज्ञानी, ध्यान में ध्यानी, तप में तपस्वी, तेज में तेजस्वी, योग में योगी, भोग में भोगी, रोग में रोगी और सोग में सोगी यह तुम्हारा मन ही तो है। इसके अतिरिक्त और कौन है? तुम इसके रंग ढंग, चाल चलन और बनाव सिंगार पर बिचार करना तो सीखो। फिर जहाँ इसको समझ लिया आगे का काम बहुत ही सुगम हो जायेगा।

इसी नियम के अनुसार जब यह ब्रह्म उपासना, ब्रह्म चिन्तन करता है और ब्रह्म अर्पण हो जाता है तो फिर ब्रह्म ही बनकर चैन लेता है देखी, सुनी, मानी, जानी और सोची विचारी हुई बातों का रूप बन जाना इसका गुण ही ठहरा। यही माया में लम्पट होकर मायावी बन जाता है। यही छाया को पकड़ कर छायावी हो जाता

है। सिद्ध, शक्ति, बुद्धि, युक्ति सब कुछ इनके आधीन हैं। हार जीत और बनने बिगड़ने का सम्बन्ध केवल तुम्हारे मन ही से है। लालची बनने से यह धन द्रव्य रखता हुआ भी कंगाल रहता हैं और सन्तुष्ट बन कर निर्धनता में मालामाल बना रहता है। कभी उड़ कर आकाश पर जाता कभी धुस कर पाताल में पहुँचता है। कभी स्वर्ग का आनन्द है, कभी नर्क की हवा खाता है।

अन्तरी या भीतरी है और दूसरी इन्द्रियाँ वाहिरी हैं। यह अन्तर की इन्द्री है। इन्द्रो तो इन्द्री ही है। यह शब्द संस्कृत धातु 'इद्' (कठिनाई से वश में आने वाली) और 'रा' (देने वाली) से निकला है। जो कठिनाई से बश में आवे और जो कुछ न कुछ देती रहे उसका नाम इन्द्री है। कहने का अभिप्राय यह है कि चाहे जो कुछ हो इसे अपने वश में करो और राजा के सदृश इसे अपना आज्ञा कारी बनाओ। यदि यह वश में नहीं है तो फिर तुम राज कर चुके। बिना कड़ाई किये हुए तुम इससे क्या लोगे! तुमने यह मिसाल सुन रक्खा होगा—'मांगे वनियां भेली न दे, मुँह में मारे अधेली दे।' भेली गुड़ की बट्टी को कहते हैं और अधेला नाम अठन्नी का है। जब तक इस बनिये का मुँह नहीं मारा जाता तब तक कुछ भी नहीं देता।

बहुत से लोग इसी मन की मानसिक और कल्पित बातों और संकल्प विकल्प की घातों में पड़े रहते हैं। हाथ कुछ नहीं आता। गेहूँ और जव तो उड़ा देते हैं और भूसो को रख लेते हैं। क्या तुम भी ऐसा ही होना चाहते हो? सावधान रहो! इस मन के जाल में कभी न फँसो नहीं तो चंचल घोड़े के समान यह तुमको भयानक गड्ढे में मुँह के बल गिराकर छोड़ेगा। इसके गुण और रूप को समझो। इसमें प्रत्येक वस्तु के रूप धारण करने का गुण है यह जान कर उसे अपने सुख का साधन बनाओ और फिर यह उसी का रूप हो जायेगा।

मन--नं० २

कुण्डलियाँ

सुख का चिन्तन यों करो, जैसे पानी मीन
जैसे पानी मीन, मीन तज नीर न जावे।
कबहूँ होय विछोह, जीव अरु प्राण गँवावे ॥१॥
प्राण गँवावे आपना, पानी सों यों प्रीत।
यही सार है भक्ति का, यही प्रेम की रीत ॥२॥
यही प्रेम की रीत है, महा कठिन व्यवहार।
ऐसे ही सुख परमात्म का, मन में रहे पियार ॥३॥
रहे पियार विचार तज, दीन अधीन प्रवीन।
सुख का चिन्तन यों करो, जैसे पानी मीन ॥४॥

घोड़ा नियत स्थान तक पहुंचाता है। वह सवार या पथिक को सुख देता है और थकावट से बचाता है परन्तु यदि मूर्ख सवार घोड़े को बगटुट छोड़ दे या मनमाने काम करने दे तो यह दशा होगी कि वह जिधर हरियाली देखेगा उसी ओर ले भागेगा। राह और स्थान का एक दम ध्यान न रक्खेगा। सावधानता को भूल कर राह में अड़ता रहेगा और यदि उसके मन के विरुद्ध ऐड़ लगाई तो सम्भव है पाँव के वल खड़ा होजाये, फेंक दे और उसे गड़हे में गिरा कर उसकी हड्डी पसली तोड़ दे।

एक साधारण उदाहरण का केवल एक ही आवश्यक अङ्ग देखा जाता है और बस !

यह मन घोड़े के सदृश है। इस संसार में इसकी सड़क इन्द्रियाँ हैं इन्द्रियों का भोग विलास इसके पहुंचने का स्थान है। जिस रथ में यह जुता हुआ है वह मनुष्य का शरीर है। बुद्धि रथवान और

आत्मा उस पर सवार हैं। उपनिषद् ने कुछ ऐसा ही कहा है उसका ऐसा कहना केवल लोक व्यवहार की दृष्टि से है।

दूसरे ढंग पर यदि यों कहा जाये कि यदि घोड़े की लगाम मोड़ दी जाये तो उसका नियत स्थान परमात्मा हो जायेगा और वह इधर से उधर फिर जायेगा। सारी बातें लगभग वैसी ही रहेंगी केवल उसके पहुंचने का स्थान बदल जायेगा और इन्द्रियों के बदले अब उसके चित्त की वृत्ति सड़क बन जायेगी जिसके सहारे वह चलता हुआ सवार को परमात्मा की ओर ले जायेगा जो सच्चा सुरा है और जिसकी व्याख्या हम आगे चल कर करेंगे।

जब यह मन संसारी व्यवहार करता है तो इन्द्रियों से काम लेता है और जब परलोक के काम में लगता है तो वृत्तियों ही की सहायता से उसे पूर्ण करता है। यह पहिले कह दिया गया है कि इन्द्रियों में सुख नहीं है। वह साधन मात्र हैं। यहाँ भी इतना और सोच लेना चाहिये कि वृत्ति या वृत्तियां सुख नहीं हैं। वह भी साधन मात्र हैं और जिस प्रकार इन्द्रियों के विषय भोग में भी अपने आत्मा के प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त और कुछ सुख नहीं है वैसे ही वृत्तियों के विषय भोग में भी आत्मा को छोड़ कर और कोई सुख नहीं है। हम लोग कल्पित और मानसिक रीति से मान रहे हैं कि इन्द्रियों के काम से सुख मिलता है। ऐसे ही कल्पना द्वारा यह भी माना जा सकता है कि परमात्मा का सुख वृत्तियों के उसकी ओर मुड़ने से प्राप्त होता है। यह केवल मानने की बात है नहीं तो वास्तव में सुख इन्द्रियों के साधन में नहीं है सुख तो हम में है और हम जैसे हैं वैसे हैं।

मन की वृत्तियाँ अनगिनत हैं। यह बाहर भी काम करती हैं और भीतर भी। इनके विशेष नाम पाँच तत्वों की दृष्टि से अहंकार काम, क्रोध, लोभ और मोह हैं। इनके साधन में अन्तरी सुख के

प्राप्त करने का कल्पित ध्यान दिलाया गया है। और इसका कारण भी है।

अहंकार आकाश का रूप है। इसमें सत्ता मात्र या सूक्ष्म अहंकार रहता है जो जीवन का विकाश है और जिसका तत्व (शब्द) है। काम वायु का रूप जो क्रियात्मक शक्ति अपने अन्दर रखता है और छूना उसका गुण है। क्रोध अग्नि का रूप है जो विकास का चिन्ह है। रूप उसका तत्व और सार है। लोभ पानी का रूप जिसमें स्वाद का गुण रहता है। रस इसका तत्व है। मोह पृथ्वी का रूप है जड़ता इसका गुण है और गन्ध उसका तत्व है।

मन इन्हीं वृत्तियों में लिपटा हुआ संसारी होता है। और भी इसकी वृत्तियाँ हैं परन्तु यह मुख्य हैं। जब जब मन में जिस तत्व की अधिकता होती है तब तब यह इन तत्वों से मिला जुला हुआ उनके सूक्ष्म धार को लेकर अपना काम करता है और इन्द्रियों पर उनका प्रभाव डालकर व्यवहार करता है।

काम की व्याख्या ऊपर आचुकी है। क्रोध के विषय में सब जानते हैं कि उसका परिणाम दुख ही होता है लालच बुरी बला कही जाती है।

मक्खी बैठी शहद पर, पंख गये लपटाय।
हाथ मले और सिर धुने, लालच बुरी बलाय॥

मोह में फँसा हुआ मनुष्य निकम्मा और तुच्छ हो जाता अहंकार का सर सदैव नीचा रहता है। यह मन के इन तत्वों में उत्पन्न हुई वृत्तियों का परिणाम होता है।

यदि इन सब वृत्तियों का सुधार न किया जाय तो वह अड़ने वाले घोड़े के समान गड्ढे में गिराने वाली सिद्ध होती हैं। इसलिये इन की गढ़त और सुधार आवश्यक है। इन्हें वश में रखकर काम करने से यह सुधर जाती हैं और इनको लेकर जब मन आत्मा की ओर मुड़ता है तो उसे सुख का अनुभव होता है। इनके साथ इसकी

विचार वृत्ति भी सम्मिलित करली जाती है जो बुद्धि के मेल से उत्पन्न होती है।

जिसका मन सुख सागर आत्मा की मछली बन कर रहता है वह क्षण मात्र के लिये भी उसके वियोग को अच्छा नहीं समझता।

परिश्रम की शुद्ध कमाई

परमार्थ कमाने के लिए सब से पहली बात यह है कि परिश्रम और गाढ़े पसीने की शुद्ध कमाई हो। जो हराम का रोटी खाता है उसको अधिकार नहीं है कि वह परमार्थ की राह में आवे। जो परिश्रम के साथ उचित रीति से कमाया जाये वह तो शुद्ध कमाई है और जो किसी तरह सताकर प्राप्त किया जाये या जिसके लेने का हमें अधिकार नहीं ह और जिसके लिये हमने उचित परिश्रम नहीं कया है वह हराम है। अनुचित रीति से परिश्रम की कमाई भी हराम ही है।

सारी बात मन की पवित्रता पर निर्भर हैं। यदि मन पवित्र है तो उसके विचार भी पवित्र होंगे। विचार की शुद्धता, पवित्रता और निर्मलता से चित्त में एकाग्रता आती है। चित्त की एकाग्रता से अपने अन्दर आत्मा का प्रकाश दिखाई देगा और साक्षात्कार का अवसर मिलेगा। यदि मन अपवित्र है तो वह मूढ़ होगा। मूढ़ता में आलस्य और सुस्ती है। यही आलस्य मन को महा स्थूल बना रखता है। यदि इस दर्जे से कुछ बढ़ गया तो फिर चंचल रहेगा और चंचल मन में भ्रान्ति और नाना प्रकार के सन्देह उत्पन्न होंगे जो भ्रम और पाप के रूप में काम करेंगे। भ्रम और भ्रान्ति के रहते हुए चित्त एकाग्र नहीं हो सकता और चित्त के एकाग्र न होने से साधन और अभ्यास में पूरा उतरना असम्भव है। लोग ध्यान में बैठते हैं परन्तु मन एकाग्र नहीं होता। वह अन्दर ही अन्दर उत्पात मचाता रहता है। कभी

आकाश पर चढ़ता है। कभी नीचे पाताल में गिर जाता है। झील की लहरों के सदृश उनके चित्त की वृत्तियाँ होती हैं और जमकर बैठने या किसी विशेष विचार पर दृढ़ता के साथ आरूढ़ होने में बाधक होती हैं।

मन के परमाणु भोजन से बनते हैं। इसलिये इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि जो कुछ खाया जाये वह शुद्ध और पवित्र होगा उतना ही मन पवित्र बनेगा और आत्मज्ञान की प्राप्ति में उतना ही सहायक भी होगा।

आहार के विषय में कई बातें ध्यान देने योग्य हैं—(१) कभी भी किसी को दुखी करके न प्राप्त किया जाये क्योंकि इसमें उस दुःखया के दुख के संस्कार मिले रहेंगे जो मन को अपवित्र रक्खेंगे, यदि बिना सताये हुए भी वह हाथ आये तब भी यह सोचना चाहिये कि हमको उसके लेने का अधिकार भी है या नहीं और दूसरी दशा में इसका हमारे हाथ आना कहाँ तक सम्भव था, (३) वह किसी ऐसे के यहां से तो नहीं आया है जो हमसे कोई काम निकालना चाहता है, (४) जिसके यहाँ से आया है वह कैसा मनुष्य है और उसकी कमाई उचित रीति से है या अनुचित रीति से है, शुद्ध है या अपवित्र, (५) चाहे वह किसी अच्छे हो मनुष्य का दिया हुआ क्यों न हो परन्तु हमने स्वयं उसके लिये कुछ परिश्रम भी किया है या नहीं।

अच्छे मनुष्यों के यहाँ भोजन का लाभ बहुतों ने वर्णन किया है परन्तु वह भी सन्देह रहित नहीं है। इसलिये इस से बचने ही में कल्याण है। कोई क्यों किसी का आधीन बने! क्यों न गाढ़े पसीने की कमाई खाये! परमार्थ में गुरू के अतिरिक्त और किसी से किसी प्रेकार की सहायता लेना अधर्म है। तात्पर्य तो यह है कि मनुष्य अपने पाँव पर खड़ा हो, आवश्यकता और सहायता का ध्यान मनुष्य को असलियत से गिरा देता है और वह कहीं का नहीं रहता।

भिक्षा मांगना भी वैसा ही निषिद्ध है जैसा घूस लेना क्योंकि

इसमें भी औरों का संस्कार मिला रहता है। बात स्पष्ट है। जिससे जो वस्तु लोगे उसके लिये अवश्य ही कृतज्ञ होना पड़ेगा और तुम्हारा सर सदैव नीचा रहेगा। चाहे कितनी ही स्वतन्त्रता की डोंग मारी जाये परन्तु जब आंखें दो चार होंगी उससे दबना ही पड़ेगा। यदि बाहिरी व्यवहार में अकड़ के कारण न दबोगे तो मन की अन्तरी दशा को क्या करोगे? वह तो सदैव मलीन और अपवित्र रहेगा। माँगना बुरा ही है चाहे कभी भी हो और किसी से भी हो। यदि कोई साधू भी किसी से मांग कर अपना पेट भरता है तो कभी सम्भव नहीं है कि परमार्थ की दृष्टि से वह पवित्र रह सके यही कारण है कि सच्चे साधू किसी से भी दान नहीं लेते और कोई न कोई काम करके अपना काम चलाते हैं। आज कल भारतवर्ष में साधुओं की संख्या बहुत बड़ी है परन्तु इनमें कोई विरला ही साधू निकलेगा। यह गृहस्थियों के सारे हुए हैं। कबीर की वाणी है—

१—माँगन मरन समान है, मत कोई माँगे भोख।
माँगन सों मरनो भलो, यह सतगुरू की सीख ॥१॥
२—मरजाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहि न आवै लाज ॥२॥
३—माँगन भलो न बाप सों, जो विधि राखे टेक।
माँगन हारा पातकी, सदा लजावै भेख ॥३॥
४—मांगन गये सो मर गये, मरे जो माँगन जांह।
उनसे पहिले वह मरे, जो होत करत हैं नाँह ॥४॥

परिश्रम की कमाई में बहुत बड़ी बरकत होती है। हम तो इस नियम के पालन का ध्यान रखते हैं। बिरादरी के सम्बन्ध में जब किसी के यहाँ खाना पड़ता है तो हम देखते हैं कि उस दिन मन चंचल हो जाता है और प्रायश्चित करने को जी चाहता है। माना इससे हमारी कमी का पता लगता है परन्तु यह सच्ची बात है। इसीलिये हम बार बार कहते हैं कि चाहे दुख उठाओ परन्तु किसी

किसी के सामने हाथ न फैलाओ।

जब हाथ, पाँव, बुद्धि, विचार मिले हुए हैं तो कोई क्यों किसी के आधीन रहे ! क्यों न कोई काम करके कमाये ! आप भी खाये औरों को भी खिलाये। दूसरों से सहायता की आशा क्यों रक्खी जाए ! यदि थोड़ा मिलता है तो थोड़े ही पर सन्तोष रक्खो।

रूखा सूखा खायके, ठंडा पानी पी।
देख पराई चूपड़ी, क्यों ललचावे जी॥
सब ते भली खीचड़ी, जामे पड़े टक लौन।
चिकनी चुपड़ी खाय कर, गला फँसावे कौन॥
सबते भली मधूकरी भाँति भाँति को नाज।
दावा काहू को नहीं, विना विलायत राज॥

—÷—

दृष्टान्त (१) भीष्म पितामह महा भारत के पीछे घायल होकर बाण शय्या पर पड़े हुए थे ! पंच पाण्डव कृष्ण भगवान के साथ उनके दर्शन को आये। साथ में द्रोपदी भी थी। युधिष्ठिर इस राजऋषि से धर्म सम्बन्धी प्रश्न करने लगे जिन के उत्तर महाभारत के शान्ति पर्व में विस्तार के साथ आये हैं। द्रौपदी ने पूछा. 'महाराज ! इस समय तो आप धर्म की इतनी बातें बता रहे हैं, उस समय आपका कहां चला गया था जब भरी सभा में दुष्ट दुश्शासन ने मेरी चीर पकड़ कर खींची और मुझे नंगी करने लगा था ? क्षत्रियों का धर्म तो यह है कि वह ऐसी दशा में स्त्रियों की रक्षा करे परन्तु वहाँ सब चुपचाप इतना बड़ा अत्याचार देख रहे थे ! पाण्डव तो जुए में हार गये थे इसलिये बोल नहीं सकते थे परन्तु आपको क्या होगया था जी आपने इस अधर्म की रोक थाम नहीं की ?' भीष्म पितामह ने उत्तर दिया, 'ऐ बेटी ! मैं उस समय दुर्योधन का अन्न खाता था। उस अन्न के प्रभाव ने कर्म संस्कार को दबा दिया था और मैं बेबस था। जो जिसका अन्न खाता है वह उसके आधीन रहता है। वह

वैसा ही करेगा जैसा अन्न वाला करता है।'

दृष्टान्त (२)-श्री रामानन्दजी परम संत कबीर साहिब के गुरु थे। एक दिन ध्यान में बैठे चित्त एकाग्र नहीं था! ध्यान न हो सका उठ खड़े हुये और चेले से पूछा, 'आज भिक्षा कहां से लाये हो?' बोला, 'एक चमार के यहाँ से लाया था।' रामानन्दजी ने क्रोध कर शाप दिया जा! तू चमार होजा।' कहते हैं वह चेला [illegible] में रैदास हुआ। यह बात सच है या झूँठ इसका पता [illegible] परिणाम बतलाता है कि बुरे अन्न का प्रभाव महात्माओं [illegible]।

योग

यही सुरति जीवन की धार है। सुरति कर्मकान्डी ग्रन्थों में दिश्वधारा के नाम से भी पुकारी जाती है। सुरति धार है और शब्द उसका आधार है। इन दोनों के मेल से दुखों से छुटकारा मिलता है और अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। बहुत से सतसंगी भाई इन बातों के न जानने के कारण दस-दस बीस-बीस साल तक भी साधन से उन्नति नहीं कर पाते। मुझ से १०-२० साल तक के अभ्यास करने वाले भाइयों ने शिकायत की है कि हमें कुछ हासिल नहीं हुआ, न रोशनी होती हैं न शब्द ही प्रकट होता है। मैं कहता हूँ उसमें १०-२० साल का कुछ काम नहीं है। ग्रहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी साल ६ माह की आवश्यकता है। यदि किसी भाई को समय मिले और इसकी चाह भी हो तो जब मैं राधास्वामी धाम में ठहरूँ तो केवल एक महीने के वास्ते मेरे पास रहें और देखें कि उनको शब्द और रोशनी कितनी जल्दी और कितने थोड़े समय में प्राप्त हो जाती है।

दीक्षा

दीक्षा कहते हैं गुरू के मंत्र देने को। मंत्र कहते हैं राय को। गुरू ने इस योग का साधन करके अपने अनुभव से जो राय स्थित की है उसको मंत्र कहते हैं। शिष्य को चाहिये कि गुरू से दीक्षा लैने के पश्चात उनके सत संगत में रह कर कुछ दिन अभ्यास करे और उनके सतसंग का लाभ उठावे और सुमरन, भजन और ध्यान के मार्ग की रुकाबट का गुरू से भेद लेता हुआ उनको प्रसन्न करने की इच्छा से सेवा करे। गुरू की सेवा करना ही मुख्य है।

शिक्षा

शिक्षा—जो क्रिया दीक्षा देते समय गुरू ने वताई है उसका वाहिरी और भीतरी भेद बतलाते हुए शिष्य को उस पर अपने सामने क्रिया करने का नाम शिक्षा है। इसी सत संगत भी कहना

चाहिये। इसी कारण दीक्षा लेकर कुछ दिन गुरू की संगति में अवश्य रहना चाहिये ताकि उधर को चलने की रा में रुकावट और विघ्न पैदा हो तो वे दूर कराते चलें शुरू जब अपने शिष्य को किसी मंत्र का उपदेश देते हैं और जब शिष्य उस मंत्र को जान लेता है तब वह शिक्षा का अधिकारी होता है और इसको इस प्रकार समझो कि किसी दुकानदार का लड़का लाखों रुपयों का हिसाब किताब सीखता है और सैकड़ों मन अनाज वगैरह का भाव सीखता है और [illegible] वह इतना अधिकार प्राप्त कर लेता है कि किसी भाव का कितन तोल में चीजों का मूल्य शीघ्र ही निकाल कर रख लेता है परन्तु जब वह अपने पिता के पास दुकान पर जाता है और पिता उसका उससे कहता है कि बेटा पाँच पैसा का गुड़ ८ सेर के भाव से तोल दे तो वह लड़का बड़े झंझट में पड़ जाता है और उंगलियों पर हिसाब लगाने लगता है परन्तु ग्राहक जल्दी मचाता है तब उसका पिता कहता है कि तुम पढ़ तो लिये पर गुने नहीं इसी प्रकार जो शिष्य दीक्षा लेकर गुरू से अलग हो जाता है वह शिक्षा नहीं लेसका और वह उस मंत्र को सिद्धो नहीं कर सकता।

मैं जब स्कूल में पढ़ता था और मेरे बाबा आढ़त की दुकान करते थे तो एक दिन काम ज्यादा होने के कारण मुझसे कहा कि तुम यह बही ले जाओ और बाजार से उघाई कर लाओ। जिसके नाम जितनी रकम लिखी हुई है उतनी शुमार करके और परख कर ले आओ। इसलिये मैं बाजार जाकर सब दुकानदारों से रुपया वसूल कर लाया, और थैली और बही को लाकर उनके आगे रख दिया। उन्होंने कहा कि इसका जोड लगाओ कि कितने रुपये हुए। मैंने जोड़ लगा कर उनको घतला दिया। थैली के रुपयों की शुमार करो, अब शुमार की गई तो जितना जोड़ बही में था, थैली में उतना रुपया न निकला। इसलिये दो तीन बार जोड़ लगाने पर गलती निकल गई और दोनों जोड़ एक मिल गये। अब मैं समझा कि इसी को शिक्षा कहते हैं। (क्रमशः)

नौनिद्धराय प्रेमी

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार आपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ । उत्तर प्रदेश
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़
५—सम्पादक का नाम	:	श्री श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़
६—स्वत्वाधिकारी संरक्षक	:	श्रीमती सुधा मीतल परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ अक्टूबर, १९७८

सुधा मीतल
प्रकाशक के हस्ताक्षर

पुस्तकें

हमारे यहां

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज

कृत

हिन्दी की आध्यात्मिक, धार्मिक, स्त्री उपयोगी, स्वास्थ्य व मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें तथा 'शाही' और 'मोती' सिलसिले के उपन्यास तथा परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज कृत उच्च कोटि की अमूल्य पुस्तकें मिलती हैं।

पूरा सूचीपत्र मंगायें।

डाक खर्च सब का अलग है।

पुस्तकें रजिस्टर्ड डाक या रेल से भेजी जाती हैं।

मिलने का पता :—

कार्यालय

मनुष्य बनो

शिव नभव, लेखराजनगर,

अलीगढ़ (उ० प्र०)

ग्राहक सं० 170

श्री Chiluveru Narasimhulu Book-S

C/o. Ramsura

Nizamabad A.P.

सम्पादक— श्रीमती सुधा मित्तल

व्यवस्थापक व प्रकाशक— श्रीमती सुधा मित्तल

शिव भवन, अलीगढ़

Printed by S. Mittal, Data Dayal Printers, Aligarh